इकाई 15 गीता 12वाँ अध्याय (11 से 20 श्लोक तक)

इकाई की रूपरेखा

15.0 उद्देश्य

15.1 प्रस्तावना

15.2 श्लोक (11 से 20 श्लोक तक)

15.3 बोध प्रश्न

15.4 सारांश

15.5 शब्दावली

15.6 उत्तरमाला

15.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें

15.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप : -

- श्रीमद्भगवद्गीता के भक्ति योग के विषय में पूर्ण जानकारी प्राप्त करेंगे।
- इस इकाई के अध्ययन से आपको स्वयं के व्यक्तित्व के विकास हेतु भी सहायता प्राप्त होगी।
- आप जानेंगे कि श्रीमद्भगवद्गीता में भक्तियोग का क्या महत्त्व है।
- भक्तियोग में किस प्रकार का भक्त ईश्वर को प्रिय है इससे आप भलीभाँति परिचित होंगे।
- श्लोकों को पढ़ने का अभ्यास होगा।
- श्लोकों के उच्चारण करने से उच्चारण कौशल का विकास होगा।
- श्लोकों के उच्चारण से विद्यार्थियों को छन्द ज्ञान भी होगा।
- श्लोकों में आए सन्धि युक्त शब्दों का विच्छेद जानेंगे जिससे आपके व्याकरणात्मक ज्ञान में भी वृद्धि होगी।
- संस्कृत भाषाव्याकरण के मूलभूत तत्त्व सन्धि के अतिरिक्त विभक्ति, समास, प्रत्यय आदि के विषय में भी आपको जानकारी प्राप्त होगी।

15.1 प्रस्तावना

पिछली इकाई में आपने पढ़ा कि कृष्ण से अर्जुन यह जानना चाहते थे कि ईश्वर की उपासना का कौन सा मार्ग श्रेष्ठ है। ईश्वर की साकार रूप में पूजा की जाए अथवा ईश्वर को निर्गुण निराकार मानते हुए ही उनका ध्यान किया जाए। वस्तुतः भक्ति के इन दोनों मार्गों में अन्ततः तो मिलना परमेश्वर में ही है तथापि सगुण एवं निर्गुण भक्तिमार्ग में से सगुण मार्ग निर्गुण मार्ग की अपेक्षा अधिक सरल है। वैसे तो ईश्वर को सभी भक्त प्रिय हैं लेकिन उनमें से भी भक्ति के मार्ग पर अपने कर्मों का फल त्याग करने वाला भक्त अधिक प्रिय है। जब भक्ति पूर्णता की अवस्था तक पहुँचती है तब भक्त परब्रह्म में लीन होकर परमानन्द स्थिति में पहुँच जाता है। ईश्वर असीम है परन्तु भक्त की एक निश्चित सीमा है वह ससीम है। ईश्वर पूर्ण है और भक्त अपूर्ण। भक्त का अनन्यभाव ही भक्तियोग का प्रमुख तात्पर्य है। अनन्यभाव से ही ईश्वर को प्राप्त किया जा सकता है।

15.2 श्लोक (11 से 20 श्लोक तक)

प्रस्तुत श्लोक में ईश्वर अपने प्रिय भक्त की विशेषताएँ बता रहे हैं –

अथैतदप्यशक्तोऽसि कर्तुं मद्योगमाश्रितः।
सर्वकर्मफलत्यागं ततः कुरु यतात्मवान् ॥११॥

अन्वय – अथ एतद् अपि कर्तुम् अशक्तः असि ततः मद्योगम् आश्रितः यतात्मवान् सर्वकर्मफलत्यागं कुरु।

पदार्थ – अथ = यदि, एतद् = इसको अपि = भी, कर्तुम् = करने में, अशक्तः = असमर्थ, असि = हो, ततः = तो, मद्योगम् = मेरी प्राप्तिरूप योग को, आश्रितः = अवलम्बित हुआ, यतात्मवान् = नियन्त्रित मनवाला, सर्वकर्मफलत्यागं = सब कर्मों के फल का मेरे लिये त्याग, कुरु = करो।

अर्थ – यदि तुम मेरी प्राप्तिरूपी भक्ति में आश्रित होकर कर्म करने में असमर्थ हो तो अपने मन को नियन्त्रित करके अपने कर्मों के सभी फलों का त्याग करो।

व्याख्या – कृष्ण अर्जुन से कहते हैं कि यदि मेरी भक्ति में रहते हुए कर्म करने में समस्या आ रही है तो उसका भी उपाय है कि तुम निष्काम कर्मयोग का आश्रय ग्रहण करो अर्थात् लौकिक या वैदिक जो भी तुम करो उसे केवल कर्म के लिए करो। वस्तुतः जो हमारे हाथ में नहीं है हम उसे पकड़ने का प्रयास करके प्रसन्न नहीं हो सकते। कर्म का फल परब्रह्म के अधीन है। यह स्वीकार करके व्यक्ति को परमशान्ति का अनुभव होता है। व्यक्ति का सारा चिन्तन केवल कर्म के प्रति ही

होता है। कृष्ण अर्जुन को समझाते हुए कह रहे हैं कि कर्मफलत्याग रूपी मार्ग अत्यन्त सरल है। इस मार्ग में न तो संसार का त्याग करना पड़ता है और न ही कर्मों को छोड़ना पड़ता है। व्यक्ति को चाहिए कि वह मात्र निष्काम भाव से बिना किसी फल की इच्छा के कर्म करता रहे।

व्याकरणात्मक टिप्पणी –

अथैतदप्यशक्तोऽसि – अथ + एतत् (वृद्धि) = अथैतद्+अपि+अशक्तः (यण् सन्धि) +असि (पूर्वरूप)= अथैतदप्यशक्तोऽसि।

अपि = अव्ययपद।

असि = अस् धातु लट् लकार, मध्यम पुरुष, एकवचन।

एतद् – एतद् शब्द प्रथमा एकवचन।

कर्तुम् = कृ धातु + तुमुन् प्रत्यय।

अशक्तः – न शक्तः इति अशक्तः नञ् समास।

मद्योगम् – मत् + योगम् (व्यञ्जन सन्धि) = मद्योगम् मया योगः मद्योगः तं तृतीया तत्पुरुष।

आश्रितः – आङ् उपसर्गपूर्वक श्रिञ् धातु + क्त प्रत्यय, पुँल्लिंग, प्रथम एकवचन।

यतात्मवान् – यत् + आत्मवान् = यतात्मवान् यतात्मन्+मतुप् प्रत्यय, पुँल्लिंग, प्रथमा विभक्ति, एकवचन, यतश्चासौ आत्मा च यतात्मा, यतात्मा अस्ति अस्य अस्मिन् वा यतात्मवान्, यतात्मा+मतुप्।

कुरु = कृ धातु लोट् लकार मध्यम पुरुष एकवचन।

सर्वकर्मफलत्यागं – कर्मणां फलानि कर्मफलानि षष्ठी तत्पुरुष, सर्वाणि च तानि कर्मफलानि च, सर्वकर्मफलानि कर्मधारय, तेषां त्यागः सर्वकर्मफलत्यागः तं सर्वकर्मफलत्यागम्, सर्वाणि कर्माणि सर्वकर्माणि, कर्मधारय। सर्वकर्मणां फलं सर्वकर्मफलम्, षष्ठी तत्पुरुष। सर्वकर्मफलस्य त्यागः, सर्वकर्मफलत्यागः, तम् सर्वकर्मफलत्यागं, षष्ठी तत्पुरुष।

श्रेयो हि ज्ञानमभ्यासाज्ज्ञानाद्ध्यानं विशिष्यते।

ध्यानात्कर्मफलत्यागस्त्यागाच्छान्तिरनन्तरम् ॥१२॥

अन्वय – अभ्यासात् हि ज्ञानं श्रेयः ज्ञानात् ध्यानं विशिष्यते। ध्यानात् कर्मफलत्यागः त्यागात् अनन्तरं शान्तिः।

पदार्थ – अभ्यासात् = अभ्यास से, हि = निश्चय ही, ज्ञानं = ज्ञान, श्रेयः = श्रेष्ठ, ज्ञानात् = ज्ञान से, ध्यानं = ध्यान, विशिष्यते = विशिष्ट होता है। ध्यानात् = ध्यान

से, कर्मफलत्यागः = समस्त कर्म के फलों का परित्याग, त्यागात् = ऐसे त्याग से, अनन्तरं = तत्पश्चात्, शान्तिः = शान्ति।

अर्थ – मर्म को न जानकर किए गए अभ्यास से ज्ञान श्रेष्ठ है। ज्ञान से परब्रह्म का ध्यान श्रेष्ठ है और ध्यान से भी श्रेष्ठ है कर्म फलों का परित्याग। क्योंकि ऐसे त्याग के तुरन्त बाद मनुष्य को परम शान्ति प्राप्त होती है।

व्याख्या – कृष्ण द्वारा दिए गए इस उद्बोधन को समझने से पूर्व यह जान लेना आवश्यक है कि अभ्यास, ज्ञान, ध्यान और कर्मफलत्याग इन सभी का अन्योन्य क्रम और अभिन्न सम्बन्ध है। क्योंकि ज्ञान से युक्त अभ्यास नाम स्मरण आदि तथा अभ्यास से युक्त ज्ञान ही स्थिर ध्यान होने का हेतु बनता है और जब स्मरण शब्द स्वर पर ध्यान स्थित हो जाता है तब कर्म के फलों का त्याग स्वयमेव हो जाता है। अर्जुन को समझाते हुए कृष्ण कहते हैं कि अभ्यास से सफलता मिल सकती है परन्तु अभ्यास का मार्ग बड़ा दीर्घ है। ज्ञान का मार्ग छोटा तो है लेकिन ज्ञान के मार्ग से भी सत्य का प्रत्यक्ष ज्ञान नहीं होता। शब्द से जो भी हमें पता चलता है वह सब परोक्ष ज्ञान है। इसीलिए गीता के अनुसार ज्ञान से ध्यान को उत्कर्ष बताया गया है क्योंकि ध्यान से प्रत्यक्ष ज्ञान होता है। इसके बाद कर्म फलों के त्याग को ध्यान से भी अधिक उत्तम बताया गया है। कारण यह है कि ध्यान स्वयं एक साधना है हम अधिक देर तक ध्यान में नहीं बैठ सकते। आप स्वयं सोचिए कि आप भला कितनी देर तक ध्यान लगा सकते हैं? दूसरी बात यह भी है कि ध्यान सरल भी नहीं है आप जितनी देर तक ध्यान लगायेंगे उतने ही समय तक शान्ति बनी रहेगी जैसे ही ध्यान भंग होगा शान्ति भी भंग हो जाएगी। जबकि कर्म के फल की इच्छा को सदैव के लिए त्यागा जा सकता है। कर्म फलों के त्याग से होने वाली शान्ति सदा बनी रह सकती है। कर्म के फल की इच्छा को ही छोड़ देना सरल मार्ग है इसलिए कृष्ण ने इस मार्ग को श्रेष्ठ बताया है। स्पष्ट है कि जब कर्म के फल के प्रति कोई मोह, लालसा, आसक्ति मन में नहीं बची है तो मन की स्थिति पूर्णरूप से शान्त हो जाती है और यही स्थिति परब्रह्म को प्राप्त करने की आधारशिला है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी –

अभ्यासात् – अभ्यासः शब्द पुँल्लिंग, पञ्चमी विभक्ति, एकवचन।

ज्ञानं – ज्ञानम् शब्द नपुंसकलिंग प्रथमा विभक्ति, एकवचन।

श्रेयो – श्रेयस् नपुंसकलिंग प्रथमा विभक्ति, एकवचन।

ज्ञानात् – ज्ञानं शब्द नपुंसकलिंग पञ्चमी विभक्ति, एकवचन।

विशिष्यते – वि उपसर्ग+ शिस् धातु + यक् (कर्मणि) लट् प्रथम पुरुष एकवचन।

ध्यानात् – ध्यान शब्द नपुंसकलिंग पञ्चमी विभक्ति, एकवचन।

कर्मफलत्यागः – कर्मणां फलं कर्मफलं तस्य त्यागः कर्मफलत्यागः षष्ठी तत्पुरुष।

त्यागात् – त्यज् धातु से घञ् प्रत्यय त्यागः शब्द शब्द पुंल्लिंग पञ्चमी विभक्ति, एकवचन।

अनन्तरं – अव्यय पद, न अन्तरं इति अनन्तरं नञ् समास।

त्यागाच्छान्तिः – त्यागात् + शान्तिः = त्यागाच्छान्तिः (विसर्ग सन्धि) ।

अद्वेष्टा सर्वभूतानां मैत्रः करुण एव च।

निर्ममो निरहंकारः समदुःखसुखः क्षमी ॥१३ ॥

संतुष्टः सततं योगी यतात्मा दृढनिश्चयः।

मय्यर्पितमनोबुद्धिर्यो मद्भक्तः स मे प्रियः ॥१४ ॥

अन्वय – यः सर्वभूतानाम् अद्वेष्टा मैत्रः करुणः एव च निर्ममः निरहङ्कारः समदुःखसुखः क्षमी सततं संतुष्टः योगी दृढनिश्चयः मयि अर्पितमनोबुद्धिः मद्भक्तः स मे प्रियः।

पदार्थ – यः = जो, सर्वभूतानाम् = समस्त जीवों के प्रति, अद्वेष्टा = द्वेष न करने वाला, मैत्रः = मैत्रीभाव वाला, करुणः = दयालु, एव = ही, च = और , निर्ममः = स्वामित्व की भावना से रहित, निरहङ्कारः = अहंकार से रहित, समदुःखसुखः = सुख-दुःख में समान भाव रखने वाला, क्षमी = क्षमाशील, सततं = निरन्तर, संतुष्टः = संतोषयुक्त, योगी = भक्तियोग में निरत, दृढनिश्चयः = पक्के निश्चय वाला, मयि = मुझमें, अर्पित मनोबुद्धिः = अर्पित मन और बुद्धि वाला, मद्भक्तः = मेरा भक्त, स = वह, मे = मुझे, प्रियः = प्यारा है।

अर्थ – जो पुरुष सभी प्राणियों में से किसी से भी द्वेष नहीं करता। जो सभी जीवों का दयालु मित्र है, जो अपने को स्वामी नहीं मानता एवं अहंकार से मुक्त है। जो सुख दुःख में समभाव रखता है अर्थात् सहिष्णु है सदैव आत्मतुष्ट रहता है, आत्मसंयमी है तथा जो दृढ़निश्चय वाला होकर मुझमें मन तथा बुद्धि को अर्पित किए हुए भक्ति में लगा रहता है, ऐसा भक्त मुझे अत्यन्त प्रिय है।

व्याख्या – उक्त दोनों श्लोकों में भगवान शुद्ध भक्त के बारे में अर्जुन को बताते हुए कहते हैं कि शुद्ध भक्त जीवन की किसी भी परिस्थिति में घबराता नहीं है। कठिन समय में भी वह भगवान् पर पूर्ण विश्वास रखता हुआ राग द्वेष से रहित शान्त भाव में रहता है। वह किसी के भी प्रति ईर्ष्या का भाव नहीं रखता। अपने शत्रु के प्रति भी शत्रुता का भाव नहीं रखता। वह सोचता है कि पूर्व में मेरे द्वारा किए गए बुरे कर्मों के कारण ही यह मेरा शत्रु बना है अतः कष्ट सहना ही अच्छा है। वह शरीर

को मिलने वाले कष्टों अर्थात् भौतिक कष्टों को कष्ट ही नहीं मानता क्योंकि उसे अच्छी तरह से पता है कि वह भौतिक शरीर नहीं है वह तो उसी परब्रह्म का कृपापात्र है। इस कारण वह किसी भी प्रकार के अहंकार से मुक्त रहता है। सुख और दुःख में समान भाव रखता है। परब्रह्म की कृपा से उसे जो भी प्राप्त होता है वह उसी में संतुष्ट रहता है उससे अधिक की इच्छा भी वह नहीं करता। इन्द्रियों के ऊपर उसका नियन्त्रण होने से वह दृढ़निश्चयी रहता है। वह झूठे तर्कों से परेशान नहीं होता क्योंकि कोई भी उसे भक्तिमार्ग के दृढ़संकल्प से हटा नहीं सकता। अपने मन तथा बुद्धि को वह परब्रह्म में ही लगा कर रखता है। हे अर्जुन! ऐसे भक्त मुझे अत्यधिक प्रिय हैं।

व्याकरणात्मक टिप्पणी –

सर्वभूतानाम् – सर्वे च ते भूताः सर्वभूताः तेषां सर्वभूतानाम् कर्मधारय समास, पुंल्लिंग षष्ठी बहुवचन।

अद्वेष्टा – न द्वेष्टा इति अद्वेष्टा नञ् समास।

मैत्रः – मित्र एव मैत्रः, मित्र + अण् प्रत्यय।

करुणः – करुणः शब्द पुंल्लिंग प्रथमा, एकवचन।

एव – अव्यय।

च – अव्यय।

निरहङ्कारः – निर्गतः अहङ्कारः यस्मात् सः निरहङ्कारः, बहुव्रीहि समास, पुँल्लिंग, प्रथमा विभक्ति,एकवचन।

निर्ममः – निर्गतः ममत्वं यस्मात् सः निर्ममः, बहुव्रीहि, पुँल्लिंग, प्रथमा विभक्ति, एकवचन।

समदुःखसुखः – दुःखं च सुखं च, दुःखसुखे, द्वन्द्वः, समे दुःखसुखे यस्य सः, समदुःखसुखः, बहुव्रीहि समास।

क्षमी – क्षमा अस्ति अस्य अस्मिन् वा इति क्षमी, क्षमा+घिनुण् (इन्) प्रत्यय = क्षमी पुँल्लिंग, प्रथमा विभक्ति,एकवचन।

सततम् – अव्यय पद।

संतुष्टः – सम् उपसर्ग + तुष् धातु + क्त प्रत्यय।

योगी – युज् धातु + योगः अस्ति अस्य इति योगी योग+इनि = योगिन् पुँल्लिंग, प्रथमा विभक्ति एकवचन।

दृढ़निश्चयः – दृढः निश्चयः यस्य सः दृढनिश्चयः षष्ठी तत्पुरुष।

मय्यर्पित – मयि + अर्पित = मय्यर्पित (यण् सन्धि)।

अर्पितमनोबुद्धि – मनः च बुद्धिश्च मनोबुद्धी, द्वन्द्वः। अर्पिते मनोबुद्धी येन सः अर्पितमनोबुद्धिः, बहुव्रीहि समास।

मद्भक्तः – मम भक्तः मद्भक्तः, षष्ठी तत्पुरुष।

स – तत् शब्द पुँल्लिंग, प्रथमा विभक्ति एकवचन।

मे – अस्मद् शब्द पुँल्लिंग,षष्ठी विभक्ति एकवचन।

प्रियः – प्रियः शब्द पुल्लिंग प्रथमा एकवचन।

यस्मान्नोद्विजते लोको लोकान्नोद्विजते च यः।

हर्षामर्षभयोद्वेगैर्मुक्तो यः स च मे प्रियः ॥१५॥

अन्वय – यस्मात् लोकः न उद्विजते च यः लोकात् न उद्विजते च यः हर्षामर्षभयोद्वेगैः मुक्तः स मे प्रियः।

पदार्थ – यस्मात् = जिससे, लोकः = लोग, न = नहीं उद्विजते = उद्विग्न होता है, च = और, यः = जो, लोकात् = लोगों से, न = नहीं, उद्विजते = उद्विग्न होता है, च = और, यः = जो, हर्षामर्षभयोद्वेगैः = सुख, असहिष्णुता, भय तथा संक्षोभ से, मुक्तः = मुक्त, स = वह, मे = मेरा, प्रियः = प्रिय।

अर्थ – जिससे लोग उद्विग्न नहीं होते हैं तथा जो स्वयं भी लोगों से उद्विग्न नहीं होता है और जो आनन्द, असहिष्णुता, भय तथा संक्षोभ से मुक्त है, वह भक्त मुझको प्रिय है।

व्याख्या – उक्त श्लोक में भक्त के अन्य गुणों का वर्णन किया गया है। वस्तुतः भक्त का आचरण उसकी दिनचर्या, व्यवहार आदि सब कुछ सभी के हित के लिए होना चाहिए। उसका कोई भी कार्य ऐसा नहीं होना चाहिए जिससे किसी अन्य को किसी भी प्रकार का कष्ट पहुँचे। इसके अतिरिक्त यदि अन्य लोग उस भक्त को परेशान करते हैं अथवा विचलित करने का प्रयास करते हैं तो भी वह परेशान नहीं होता क्योंकि उसका समस्त व्यवहार परब्रह्म की कृपा से ही है। कृष्ण की भक्ति में लीन ऐसे भक्त को कोई भी विचलित नहीं कर सकता। कृष्ण को ऐसे भक्त प्रिय हैं जो सुख-दुःख, मान-अपमान, जय-पराजय, यश-अपयश आदि सभी स्थितियों में समान भाव रखते हैं। प्रत्येक कार्य-कलाप को वे परब्रह्म की ही महिमा मानकर प्रत्येक परिस्थिति में सदैव अटल एवं अविचल रहते हैं।

व्याकरणात्मक टिप्पणी –

यस्मात् – यत् शब्द पुँल्लिंग, पञ्चमी विभक्ति, एकवचन।

लोकः – लोकः शब्द पुँल्लिंग, प्रथमा विभक्ति, एकवचन।

उद्विजते – उत् उपसर्ग विज् धातु, लट् लकार प्रथम पुरुष, एकवचन।

लोकात् – लोकः शब्द पुँल्लिंग, पञ्चमी विभक्ति, एकवचन।

हर्षामर्षभयोद्वेगैः – हर्षश्च अमर्षश्च भयं च उद्वेगश्च हर्षामर्षभयोद्वेगाः, तैः हर्षामर्षभयोद्वेगैः, द्वन्द्व समास, पुंल्लिंग, तृतीया विभक्ति, बहुवचन।

भयोद्वेगैः – भय + उद्वेगैः = भयोद्वेगैः (गुण सन्धि) ।

मुक्तः – मुच् धातु +क्त प्रत्यय पुंल्लिंग, प्रथमा विभक्ति, एकवचन।

अनपेक्षः शुचिर्दक्षः उदासीनो गतव्यथः।

सर्वारम्भपरित्यागी यो मद्भक्तः स मे प्रियः ॥१६॥

अन्वय – यो मद्भक्तः अनपेक्षः शुचिः दक्षः उदासीनः गतव्यथः सर्वारम्भपरित्यागी, स मे प्रियः।

पदार्थ – यः = जो, मद्भक्तः = मेरा भक्त, अनपेक्षः = इच्छाओं से रहित, शुचिः = पवित्र, दक्षः = निपुण, उदासीनः = पक्षपात से रहित, गतव्यथः = सारे कष्टों से मुक्त, सर्वारम्भपरित्यागी = समस्त प्रयत्नों का परित्याग करने वाला, स = वह, मे = मेरा, प्रियः = प्रिय है।

अर्थ – मेरा जो भक्त आकांक्षाओं से रहित बाहर-भीतर से शुद्ध, निपुण, पक्षपातरहित समस्त कष्टों से मुक्त है। जो किसी फल के लिए प्रयत्नशील नहीं रहता वह मुझे प्रिय है।

व्याख्या – कृष्ण बताते हैं कि जो भक्त यह सोचकर कि जो भी कार्य हो रहे हैं वह सब परमात्मा की इच्छा से ही हो रहे हैं मैं केवल साधन मात्र हूँ। इसी भाव से वह सारे कार्य करता है। उसे किञ्चित् मात्र भी यह अहंकार नहीं होता कि इन समस्त कार्यों में उसका कोई भी योगदान है। वह सदैव चिन्तामुक्त रहता है। वह जानता है कि उसका शरीर भी एक उपाधि मात्र है अतः शारीरिक कष्ट आने पर भी वह घबराता नहीं है। वह किसी फल अथवा यश आदि के लिए कार्य नहीं करता, ऐसा भक्त ही कृष्ण को प्रिय है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी –

अनपेक्षः – न विद्यते अपेक्षा यस्य सः अनपेक्षः, बहुव्रीहि समास, पुँल्लिंग, प्रथमा विभक्ति, एकवचन।

शुचिः – शुचिः शब्द पुँल्लिंग, प्रथमा विभक्ति, एकवचन।

दक्षः – दक्षः शब्द पुँल्लिंग, प्रथमा विभक्ति, एकवचन।

उदासीनः – उद् उपसर्ग + आस् धातु +शानच् प्रत्यय पुल्लिंग, प्रथमा विभक्ति,

एकवचन।

गतव्यथः – गता व्यथा यस्य सः गतव्यथः, बहुव्रीहि समास।

सर्वारम्भाः – सर्वे च ते आरम्भाश्च सर्वारम्भाः, कर्मधारय समास।

सर्वारम्भा परित्यागी – सर्वारम्भाणां परित्यागी सर्वारम्भपरित्यागी, षष्ठी तत्पुरुष समास।

यो न हृष्यति न द्वेष्टि न शोचति न काङ्क्षति।

शुभाशुभपरित्यागी भक्तिमान्यः स मे प्रियः ॥१७॥

अन्वय – यः न हृष्यति न द्वेष्टि न शोचति न काङ्क्षति शुभाशुभपरित्यागी भक्तिमान् स मे प्रियः।

पदार्थ – यः = जो, न = कभी नहीं, हृष्यति = हर्षित होता है, न = न कभी, द्वेष्टि = द्वेष करता है, न = नहीं, शोचति = पछतावा करता है, न = नहीं, काङ्क्षति = इच्छा करता है, शुभाशुभपरित्यागी = शुभ तथा अशुभ का परित्याग करने वाला, भक्तिमान् = भक्ति से युक्त अर्थात् भक्त, स = वह, मे = मेरा, प्रियः = प्रिय है।

अर्थ –जो न कभी प्रसन्न होता है, न द्वेष करता है, जो न तो पछतावा करता है, न इच्छा करता है तथा शुभ एवं अशुभ दोनों प्रकार की वस्तुओं का परित्याग कर देता है, भक्ति से युक्त वह पुरुष मुझे प्रिय है।

व्याख्या – शुद्ध भक्त की विशेषता होती है कि वह सांसारिक चीजों की प्राप्ति से न तो प्रसन्न होता है और न ही किसी प्रकार की हानि होने पर वह दुःखी होता है। किए गए कार्यों के प्रति अथवा किसी वस्तु के न मिलने पर, कोई लाभ का कार्य समय पर न होने पर इत्यादि ऐसी उन सभी स्थितियों में जिनमें सामान्य व्यक्ति निराश हो जाते हैं, शुद्ध भक्त पछतावा नहीं करता और न ही वह किसी अभीष्ट कार्य की इच्छा करता है। पाप-पुण्य, शुभ-अशुभ आदि सभी प्रकार के कर्मों से वह सदा ही दूर रहता है। इस प्रकार वह भक्त केवल भक्ति में ही लगा रहता है, ऐसा भक्त ही परमेश्वर को प्रिय है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी –

हृष्यति – हृष् धातु लट् लकार, प्रथम पुरुष, एकवचन।

द्वेष्टि – द्विष् धातु लट् लकार, प्रथम पुरुष, एकवचन।

शोचति – शुच् धातु लट् लकार, प्रथम पुरुष, एकवचन।

काङ्क्षति – काङ्क्ष् धातु लट् लकार, प्रथम पुरुष, एकवचन।

शुभाशुभपरियागी – शुभं च अशुभं च शुभाशुभे, द्वन्द्व समास, शुभाशुभयोः परित्यागी, शुभाशुभपरित्यागी, षष्ठी तत्पुरुष समास।

भक्तिमान्यः – भक्ति + मतुप् प्रत्यय = भक्तिमत् पुंल्लिंग, प्रथमा विभक्ति, एकवचन।

समः शत्रौ च मित्रे च तथा मानापमानयोः।

शीतोष्णसुखदुःखेषु समः सङ्गविवर्जितः ॥१८॥

तुल्यनिन्दास्तुतिर्मौनी सन्तुष्टो येन केनचित्।

अनिकेतः स्थिरमतिर्भक्तिमान्मे प्रियो नरः ॥१९॥

अन्वय – शत्रौ च मित्रे च तथा मानापमानयोः समः शीतोष्णसुखदुःखेषु समः सङ्गविवर्जितः तुल्यनिन्दास्तुतिः मौनी येन केनचित् सन्तुष्टः अनिकेतः स्थिरमतिः भक्तिमान् नरः मे प्रियः।

पदार्थ – शत्रौ = शत्रु के विषय में, च = और, मित्रे = मित्र के विषय में, च = और, तथा = उसी प्रकार, मानापमानयोः = मान तथा अपमान में, समः = समान, शीतोष्णसुखदुःखेषु = सर्दी-गर्मी, सुख-दुःख में, समः = समान, सङ्गविवर्जितः = आसक्ति से रहित, तुल्यनिन्दास्तुतिः = निन्दा तथा स्तुति को समान समझने वाला, मौनी = मौन का आचरण करने वाला, येन केनचित् = जिस किसी से भी, सन्तुष्टः = सन्तुष्ट, अनिकेतः = बिना घर वाला, स्थिरमतिः = स्थिर बुद्धि वाला, भक्तिमान् = भक्ति से युक्त, नरः = मनुष्य, मे = मेरा, प्रियः = प्रिय है।

अर्थ – जो मित्रों तथा शत्रुओं के विषय में समान भाव रखता है। जो मान तथा अपमान, शीत तथा गर्मी, सुख तथा दुःख, यश तथा अपयश में समभाव रखता है, जो निन्दा-स्तुति को समान समझने वाला मौन का आचरण करने वाला और जिस किसी भी कारण से संतुष्ट होने वाला, जो घर से विहीन है, स्थिर बुद्धि वाला है तथा जो भक्ति में संलग्न है, वह मुझे प्रिय है।

व्याख्या – मानव का स्वभाव होता है कि जब उसकी प्रशंसा की जाती है तो वह खुश होता है और जब उसकी निन्दा होती है तो वह परेशान हो जाता है, तनाव में आ जाता है। इसके विपरीत जो भक्त होता है वह मान-अपमान, यश-अपयश से प्रभावित नहीं होता। वह अत्यन्त धैर्यवान् होता है। उसके लिए सुख-दुःख एक जैसे ही हैं। वह कभी भी किसी प्रकार की आसक्ति नहीं रखता। भक्त की विशेषता बताते हुए कृष्ण ने कहा है कि ऐसा भक्त जो सदैव मौन रहता है। यहाँ मौन रहने का तात्पर्य यह है कि शुद्ध भक्त कभी भी अनर्गल प्रलाप नहीं करता वह परब्रह्म की भक्ति के अतिरिक्त अन्य व्यर्थ की बातों को करने की अपेक्षा मौन रहकर ही भक्ति में मग्न रहता है। उसका बोलना परब्रह्म के ही निमित्त होता है। वह प्रत्येक परिस्थिति में सन्तुष्ट रहता है। धूप हो या वर्षा हो, आँधी हो या तूफान हो, भरपेट भोजन मिले अथवा भोजन न मिले, इन सबका प्रभाव भक्त पर नहीं पड़ता। वह जीवन निर्वाह करने के लिए घर की चिन्ता नहीं करता वह वन में भी रह सकता है

और पेड़ के नीचे भी। उसे झोपड़ी मिले अथवा राजभवन इन सबके प्रति वह कभी आसक्त नहीं रहता क्योंकि वह अपने संकल्प और ज्ञान में दृढ़ होता है। सभी प्राणियों के हित की कामना से वह अपना सर्वस्व परब्रह्म के प्रति अर्पित करते हुए घर में रहते हुए भी अनासक्त भाव से बिना घर वाला अर्थात् अनिकेत है। उक्त समस्त गुणों को धारण करने वाला भक्त ही ईश्वर को प्रिय है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी –

शत्रौ – शत्रुः शब्द पुल्लिंग, सप्तमी विभक्ति, एकवचन।

मित्रे – मित्रम् शब्द नपुंसकलिंग, सप्तमी विभक्ति, एकवचन।

मानापमानयोः – मानं च अपमानं च मानापमाने तयोः मानापमानयोः, द्वन्द्व समास।

शीतोष्णसुखदुःखेषु – शीतं च ऊष्णं च सुखं च दुःखं च शीतोष्णसुखदुःखानि तेषु शीतोष्णसुखदुःखेषु द्वन्द्व समास नपुंसकलिंग, सप्तमी विभक्ति, बहुवचन।

सङ्गविवर्जितः – सङ्गेन विवर्जितः सङ्गविवर्जितः, तृतीया तत्पुरुष समास।

तुल्यनिन्दास्तुतिः – निन्दा च स्तुतिश्च निन्दास्तुती, द्वन्द्व समास, तुल्ये निन्दास्तुतिर्यस्य सः तुल्यनिन्दास्तुतिः, बहुव्रीहि समास।

मौनी – मौनम् अस्यास्तीति मौनी, मुनेर्भावः मौनम् मौनी। मौन+इनि प्रत्यय।

येन – यत् शब्द पुँल्लिंग, तृतीया विभक्ति,एकवचन।

सन्तुष्टः – सम् + तुष् +क्त प्रत्यय, पुँल्लिंग, प्रथमा विभक्ति, एकवचन।

अनिकेतः – न विद्यते निकेतः यस्य सः अनिकेतः, बहुव्रीहि समास।

स्थिरमतिः – स्थिरा मतिः यस्य सः स्थिरमतिः, बहुव्रीहि समास।

भक्तिमान् – भक्तिः अस्यास्तीति भक्तिमान् भक्तिः + मतुप् प्रत्यय, पुँल्लिंग, प्रथमा विभक्ति, एकवचन।

ये तु धर्म्यामृतमिदं यथोक्तं पर्युपासते।

श्रद्दधाना मत्परमा भक्तास्तेऽतीव मे प्रियाः ॥२०॥

अन्वय – तु ये श्रद्दधानाः मत्परमाः भक्ताः यथोक्तम् इदं धर्म्यामृतं पर्युपासते ते मे अतीव प्रियाः।

पदार्थ – तु = और, ये = जो, श्रद्दधानाः = श्रद्धा करने वाले, मत्परमाः = मुझे ही अपना परम लक्ष्य मानने वाले, भक्ताः = भक्तजन, यथोक्तम् = जैसा कहा गया है, इदं = यह, धर्म्यामृतं = धर्मपूर्ण अमृत को, पर्युपासते = भली प्रकार से उपासना करते हैं, ते = वे, मे = मेरे, अतीव प्रियाः = अत्यधिक प्रिय हैं।

अर्थ – और जो श्रद्धा करने वाले तथा मुझे ही अपना परम लक्ष्य मानने वाले भक्त धर्मपूर्ण अमृतरूप इस ज्ञान का उक्तानुसार भली प्रकार सेवन करते हैं वे भक्त मुझे अत्यधिक प्रिय हैं।

व्याख्या – पूर्व में कहे गए धर्मसमुदाय का फल सहित उपसंहार करते हुए श्रीकृष्ण कहते हैं कि जो पुरुष इस धर्ममय अमृत को जैसा मैंने बताया है उसी प्रकार अर्थात् यथायोग्य रीति से ग्रहण करता है साथ ही उस पर श्रद्धा करते हुए मेरे परायण हुए जो भक्त उसकी उपासना करते हैं, उसका अनुष्ठान करते हैं वे मुझे अत्यधिक प्रिय हैं।

व्याकरणात्मक टिप्पणी –

धर्म्या – धर्म + यत् प्रत्यय = धर्म्या।

भक्ताः – भज् धातु + क्त प्रत्यय भक्तः पुँल्लिंग, प्रथमा विभक्ति, बहुवचन।

श्रद्दधानाः – श्रत् शब्द + धा धातु + शानच् प्रत्यय।

मत्परमाः – अहं परमः येषां ते मम परमाः मत्परमाः, षष्ठी तत्पुरुष।

यथोक्तम् – यथा + उक्तम् = यथोक्तम्, गुणसन्धि।

इदम् – इदम् शब्द नपुंसकलिंग प्रथमा, विभक्ति, एकवचन।

धर्म्यामृतमिदम् – धर्म्या+अमृतम् (दीर्घसन्धि) = धर्म्यामृतम्+इदं (वर्णसंयोग) = दीर्घामृतमिदम्।

अतीव = अति + इव = अतीव, दीर्घ सन्धि।

15.3 बोध प्रश्न

बहुविकल्पीय प्रश्न

1. चित्त को संयमित करते हुए क्या होने का निर्देश भगवान देते हैं –

   (क) ज्ञानवान्

   (ख) यतात्मवान्

   (ग) शौर्यवान्

   (घ) अनात्मवान्

2. कुर्वन् में प्रत्यय है -

   (क) शतृ प्रत्यय

   (ख) क्त्वा प्रत्यय

(ग) ल्यप् प्रत्यय

(घ) शानच् प्रत्यय

3. अथैतद् का क्या विच्छेद होगा ?

(क) अथ+ ऐतद्

(ख) अथै+ तद्

(ग) अथे+एतद्

(घ) अथ+एतद्

4. ईश्वर को कैसा भक्त प्रिय है ?

(क) जो सबके प्रति ईर्ष्या भाव रखे।

(ख) जो किसी के प्रति द्वेष भाव न रखे।

(ग) जो अहंकारी हो।

(घ) जो सुख दुःख में भिन्न-भिन्न भाव रखे।

5. कैसा भक्त ईश्वर को अत्यन्त प्रिय है ?

(क) फल प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील।

(ख) फल प्राप्ति के लिए संलग्न।

(ग) फल प्राप्ति का परित्याग करने वाला।

(घ) इनमें से कोई नहीं।

6. शीत+ऊष्णः की सन्धि क्या होगी ?

(क) शीतौष्णः

(ख) शीतोष्णः

(ग) शीतूष्णः

(घ) शीतैष्णः

7. यथोक्तम् में सन्धि है –

(क) गुण सन्धि

(ख) दीर्घ सन्धि

(ग) यण् सन्धि

(घ) अयादि सन्धि

8. यस्मात् शब्द किस विभक्ति का है ?

(क) तृतीया विभक्ति

(ख) चतुर्थी विभक्ति

(ग) पञ्चमी विभक्ति

(घ) सप्तमी विभक्ति

अति लघु उत्तरीय प्रश्न –

1. अनिकेतः शब्द का क्या अर्थ है ?
2. शुचिः शब्द का क्या अर्थ है ?
3. ज्ञानात् शब्द में कौन सी विभक्ति है ?
4. अभ्यास से क्या श्रेष्ठ है ?
5. कर्मफल के त्याग से क्या होता है ?
6. मन एवं बुद्धि को किस पर समर्पित करने वाला भक्त कृष्ण को प्रिय है।

सत्य/असत्य कथन

1. ईश्वर के स्वरूप के ध्यान से ज्ञान श्रेष्ठ है।
2. कर्म फलों का त्याग करना सबसे श्रेष्ठ है।
3. सुख-दुःख में समभाव रखने वाला व्यक्ति ईश्वर को प्राप्त नहीं कर सकता।
4. वस्तुओं का संग्रह करने वाला भक्त ईश्वर को प्रिय है।
5. च अव्ययपद है।
6. 'सततम्' का अर्थ निरन्तर होता है।

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. ईश्वर को कैसा भक्त प्रिय है विस्तार से लिखिए।
2. सभी कर्मों के फल त्याग को सर्वोत्तम क्यों कहा गया है?
3. भक्तियोग का सारांश लिखिए।

15.4 सारांश

ईश्वर ही स्रष्टा है। सभी का भरण-पोषण करने वाला है, धारण करने वाला है, सब कुछ परब्रह्म ही है, जब व्यक्ति ऐसा सोचता है तब उसके हृदय में ईश्वर के प्रति प्रेम

उत्पन्न होता है। जब जीव के हृदय में समस्त प्राणियों के प्रति द्वेष का अभाव हो जाता है तब उसमें स्वाभाविक मैत्रीभाव और दयाभाव उत्पन्न हो जाता है। परिणामस्वरूप ऐसे भक्त में न ममता रहती है और न ही अहंकार की भावना। कारण, भगवान् के भक्त का सभी जगह समभाव रहता है। सुख-दुःख आदि प्रत्येक अवस्था में वह एक समान भाव ही रखता है। वह न प्रसन्न होता है न करुणा से प्रभावित होता है न किसी से द्वेष करता है यहाँ तक कि शुभ-अशुभ कर्मों को भी त्याग देता है। उदाहरणार्थ - जैसे एक वृक्ष समान रूप से अपने को जल देने वाले और काटने वाले दोनों प्रकार की प्रवृत्ति वाले व्यक्तियों को समान रूप से फल, छाया, लकड़ी आदि प्रदान करता है उसी प्रकार भक्त भी बिना किसी द्वेष के अपने कार्य में लगा रहता है।

मनुष्य वाणी से ही नहीं अपितु मन से भी बोलता रहता है। यदि वह बोलना बन्द भी कर दे परन्तु मन से विषयों का चिन्तन करता रहे तो यह बाह्य मौन है। परन्तु जब भक्त का चित्त ईश्वर में ही एकाकार हो जाता है तो यही मौन वास्तविक मौन कहलाता है। वही भक्त मौनी अर्थात् मननशील है जो स्थिरबुद्धि वाला श्रद्धायुक्त है। ऐसा ही भक्त भगवान् को अत्यधिक प्रिय है। भक्तियोग का मुख्य अर्थ है 'अनन्यभाव'। ईश्वर के अतिरिक्त किसी भी अन्य का भाव मन में न लाना ही अनन्यभाव है। इस अनन्यभावना से ही ईश्वर की प्राप्ति होती है। जिस परमात्मा से समस्त सृष्टि का संचालन हो रहा है, वह सनातन, परमेश्वर अनन्यभक्ति से ही प्राप्त होता है। उस सर्वशक्तिमान् ईश्वर में ही अपना सर्वस्व समर्पित करके सदा सन्तुष्ट रहना एवं अनन्य प्रेमपूर्वक सर्वदा उस परमेश्वर का स्मरण करते रहना ही अनन्य भक्ति है। इस अनन्यभक्ति से ही भक्त ईश्वर को प्राप्त करता है।

भक्तियोग के माध्यम से भक्त ईश्वर का सामीप्य पाना चाहता है। वह अपना सर्वस्व ईश्वर के प्रति समर्पित कर देता है। भक्तिमार्ग में भगवान् के सगुण रूप की उपासना होती है। इस मार्ग में ब्रह्म के अव्यक्त रूप की उपासना न होकर ईश्वर के व्यक्त रूप की उपासना होती है। ईश्वर की उपासना, भजन, अर्चन, ध्यान आदि करना भगवान् की भक्ति है। भगवान् पूर्ण एवं असीम है, भक्त अपूर्ण एवं ससीम है। भगवान् को ऐसे ही भक्त प्रिय हैं जो किसी भी फल की लालसा न करता हुआ अपने समस्त कर्मों के फलों का परित्याग कर देता है। भक्ति के मार्ग का अनुसरण करते हुए परमशक्ति को ही अपना लक्ष्य जानकर श्रद्धासहित सब कुछ समर्पित करते हुए संलग्न रहता है ऐसा भक्त कृष्ण को सर्वाधिक प्रिय है। इस प्रकार भक्तियोग में ईश्वर ने भक्ति को परमश्रेष्ठ मानते हुए उसी का अनुसरण करने हेतु प्रेरित किया है।

15.5 शब्दावली

अशक्तः – असमर्थ

यतात्मवान् – जीते हुए मन वाला

मद्योगम् – मेरे प्राप्तिरूप योग को

विशिष्यते – श्रेष्ठ है।

सर्वभूतानाम् – सभी प्राणियों में

निर्ममः – ममता से रहित

निरहंकारः = अहंकार से रहित

क्षमी – क्षमावान्

उद्विजते – उद्वेग को प्राप्त

अमर्ष – दूसरे की उन्नति को देखकर संताप होना अमर्ष कहलाता है।

अनपेक्षः – आकांक्षा से रहित

शुचिः – पवित्र

गतव्यथः – दुःखों से छूटा हुआ

उदासीनः – पक्षपात से रहित

शीतोष्णः – सर्दी और गर्मी

विवर्जितः – रहित है।

मौनी – मननशील

श्रद्दधानाः – श्रद्धायुक्त पुरुष

अतीव - अत्यधिक

15.6 उत्तरमाला

बहुविकल्पीय प्रश्न

1. यतात्मवान् 2. शतृ प्रत्यय 3. अथ+एतद् 4. जो किसी के प्रति द्वेष भाव न रखे। 5. फल प्राप्ति का परित्याग करने वाला 6. शीतोष्ण 7. गुण सन्धि 8. पञ्चमी विभक्ति

अतिलघु उत्तरीय

1. घर 2. पवित्र 3. पञ्चमी विभक्ति 4. ज्ञान 5. शीघ्र ही परम शान्ति 6. ईश्वर/परब्रह्म/कृष्ण/परमात्मा पर

सत्य-असत्य

1. असत्य 2. सत्य 3. असत्य 4. असत्य 5. सत्य 6. सत्य

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. छात्र स्वयं से करें।

2. छात्र स्वयं से करें।

3. छात्र स्वयं से करें।

15.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें –

- श्रीमद्भगवद्गीता, श्रीमच्छाङ्करभाष्यादि सहित, मुंशीराम मनोहरलाल पब्लिशर्स
- श्रीमद्भगवद्गीता, गीताप्रेस गोरखपुर
- श्रीमद्भगवद्गीता यथारूप, भक्तिवेदान्त बुक ट्रस्ट
- श्रीमद्भगवद्गीता, टीका सहित, चौखम्भा विद्याभवन वाराणसी
- भारतीय दर्शन, प्रथम खण्ड, डॉ. राधाकृष्णन्, राजपाल प्रकाशन दिल्ली
- अनुवाद चन्द्रिका, चक्रधर नौटियाल हंस, चौखम्भा प्रकाशन, वाराणसी

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY